चतुर्थ अध्याय

महाकाव्य काल से प्राक्–गुप्त काल (300 ई0पू0 – 300 ई0 तक) वर्ण व्यवस्था का विकास

वर्ण व्यवस्था –

उत्तर वैदिक काल में जो वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप था वही महाकाव्य युग में स्वरूप मिलता है। चातुर्वर्ण की उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद के दशवें मण्डल के पुरुषसूक्त की तरह महाकाव्य में भी परमपुरुष से इसका उत्पन्न होना बताया गया है।[1] महाभारत में लिखा है कि क्रोध न करना, सत्य बोलना, न्याय प्रियता, क्षमा, अपनी विवाहिता पत्नी से संतान की उत्पत्ति, सदाचार, झगड़ों से बचना, सरलता और सेवकों का पालन पोषण ये नौ चारों वर्णों के कर्तव्य हैं।[2] पूर्वकाल में जैन एवं बौद्ध धर्मों से प्रभावित वर्ण–व्यवस्था पर मौर्योत्तर काल में एक और आवत विदेशी आक्रमण के रूप में हुआ। इससे छिन्न–भिन्न व्यवस्था को नियंत्रित एवं पुनर्व्यवस्थित करने तथा नया आयाम देने का कार्य इस काल में किया गया। यह कार्य विशेषतः मनु ने किया। ऐसी धारणा है कि रामायण काल में वर्ण व्यवस्था क्रमिक विकास की दिशाओं में संक्रमण कर रही थी।[3]

इस काल में जर्जर व्यवस्था को पुनः स्थिर करने के उद्देश्य से वर्ण–व्यवस्था को केवल नये रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया गया।

---

[1] रामायण 3.14. 29.30 मुखतो ब्राह्मणा जात उरसः क्षत्रियास्तथा। उरुभ्यां जज्ञिरे वैश्या पदभ्यां शूद्रा.....।। महाभारत 122, 4.5 ब्राह्मणो मुखतः सृष्ट ब्राह्मणो राजसत्तम। बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्ट उरुभ्यां वैश्य एवं च।। वर्णश्चतुर्यः संभूत पद्भ्यां शूद्रो विनिर्मितः।।

[2] महाभारत, शांति पर्व, 60.7

[3] घोष, नगेन्द्र नाथ, अर्ली हिस्ट्र आफ इण्डिया, सं0 4 इण्डियन प्रेस, 196.

स्थिरता के लिए ही इस काल में विचार दृढ़ता के साथ व्यक्त किये गये।[4] वर्ण–विभाजन का कारण नृवंश तत्त्व सम्बन्ध तथा वंशानुक्रमित व्यवसाय रहा है। आर0सी0 मजूमदार ने विचार व्यक्त किया की वर्ग विभाजन और उसका विकास सामाजिक क्षेत्र में उग्र रूप से विद्यमान सहकार की प्रबल भावना के कारण हुआ।[5] वर्ण विभाजन में विकृति जन्मना होने के कारण ही हुई थी, इसलिए महाभारत में विकासक्रम में आये किंचित दोषों से युक्त वर्ण–व्यवस्था को पुनः आदर्श रूप में लाने का प्रयास किया गया और इसका आधार गुण कर्म बताया गया। मनु ने विचार व्यक्त किया कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ये तीनों द्विजाति हैं। जबकि चौथा वर्ण शूद्र है, पाँचवा कोई वर्ण नहीं है।[6] रामायण में कहा गया है कश्यप की पत्नी मनु ने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः मुख, ह्रदय, उरू तथा दोनों पैरों से उत्पन्न किया।[7]

मनुस्मृति में विचार प्राप्त होता है कि लोककल्याण के लिए ईश्वर ने अपने शरीर के दो भाग, पुरूष और स्त्री रूप में किये और स्त्री से विराट पुरुष का सृजन किया तथा मुख, बाहु, जांघ तथा चरण से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की।[8] महाभारत में भी चारों वर्णों की उत्पत्ति इसी प्रकार बतायी गयी है। शरशैय्या पर शयन करते हुए भीष्म ने कृष्ण के अंगों से चारों वर्ण की उत्पत्ति बतायी है।[9] महाभारत में ही सबसे पहले कृष्ण के मुख से सैकड़ों ब्राह्मण, भुजाओं से सैकड़ों क्षत्रिय, उरूओं से सैकड़ों वैश्य तथा चरणों से

---

[4] शास्त्री रघुवीर महाभारतकालीन राज्य–व्यवस्था, मेरठ–1971 पृ0 66.
[5] मजूमदार, आर.सी. कारपोरेट लाइफ इन ऐशिएंट इण्डिया, कलकत्ता 1969 सं0 अ0 1
[6] मनु0 10/4
[7] रामायण, 3/14/29–30
[8] मनु. I/31-32
[9] महाभारत 12/47/43, 12/200/5

सैकड़ों शूद्र की उत्पत्ति बतायी गयी है।[10] युधिष्ठिर–भीष्म संवाद में भीष्म ने कहा कि प्रारम्भ में कोई वर्ण नहीं था, ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण सभी ब्राह्मण कहलाये किन्तु कालान्तर में स्वभाव की भिन्नता और व्यवसायों की विविधता के कारण वे अलग–अलग वर्णों में बँट गये,[11] जो ब्राह्मण स्वधर्म का त्याग कर विषय–भोग में लिप्त तथा तीक्ष्ण स्वभाव और क्रोधी तथा साहसी कार्य करने वाले हो गये उनका रंग लाल हो गया, वे क्षत्रिय भाव को प्राप्त होकर क्षत्रिय कहलाये। इसी प्रकार पशुपालन तथा कृषि कर्म की जीविका अपनाने वाले वैश्य हो गये उनका रंग पीला हो गया। शौच और सदाचार से भ्रष्ट तथा हिंसा और असत्य के प्रेमी एवं सभी तरह के नित्य कर्म द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले ब्राह्मण के शरीर का रंग काला पड़ गया और शूद्र हो गये।[12]

महाभारत में जन्मगत वर्णानुसार कर्म करना उचित बताया गया।[13] व्यक्ति का संस्कार भी वर्णानुसार जन्म के कारण ही होता है।[14] यहाँ इस बात पर बल दिया गया है कि यथोचित गुणों के अभाव में भी व्यक्ति का वर्ण जन्म के अनुसार ही होता है।वर्ण–व्यवस्था के सन्दर्भ में भगवान कृष्ण के विचार भी महत्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण ने कहा है कि चारों वर्ण की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के अनुसार की है।[15] मनुस्मृति में कहा गया है कि आत्मा, सत्व, रज एव ंतम गुणों से युक्त होती है।[16] जनक पराशर संवाद में पराशर ने जाति और निन्दित कर्म

---

[10] वही 12/200/31–32
[11] वही 12/77/2–6
[12] महाभारत 12/181/11–14
[13] वही, 12/293/21
[14] महाभारत 12/326/14–19
[15] वही 6/27/35
[16] मनु0 12/23

दोनों को ही दूषित बताया है।[17] वर्णानुसार कर्म करने वाला व्यक्ति ही पवित्र माना गया।

महाभारत तथा रामायण में धर्म प्रधान राजाओं के राज्यों में प्रजा द्वारा वर्णानुसार कार्य करने का उल्लेख है।[18] महाभारत के विचारकों का दृष्टिकोण यह था कि कर्म और समय के साथ–साथ जाति में भी परिवर्तन सम्भव है। मौर्योत्तर काल में द्विजों (ब्राह्मण) की श्रेष्ठता[19] का कारण उनके कर्म थे। रघुवीर शास्त्री का विचार है कि महाभारत काल में वर्ण–व्यवस्था की कट्टरता भौगोलिक, राजनीतिक तथा सामाजिक कारणों से दूर होती जा रही थी।[20] किसी व्यक्ति की उच्चता उसके वर्ण पर नही अपितु निर्मल चरित्र वर्ण के लिए अक्रोध, सत्यवचन, संविभाग, क्षमा, स्वपत्नी से ही सन्तान उत्पन्न करना शूद्रता अद्रोह तथा आश्रितों के पोषण आदि का विधान किया गया।[21]

मौर्योत्तर विचारकों ने वर्ण धर्म के पालन के लिए राजा की सहायता का भी विचार व्यक्ति किया था। इस सन्दर्भ में राजा को भी निर्देश दिये गये हैं।[22] चारों वर्ण द्वारा स्वकर्म सम्पादित हो इसके लिए दण्ड का प्रयोग भी किया जा सकता था।[23] इसी कारण वर्ण की रक्षा के लिए सभी वर्गों के लोगों को शस्त्र उठाने का विचार भी व्यक्त किया गया है।[24] राज्य के सम्पन्न सुसंगठित तथा शक्तिशाली होने के लिए अच्छी प्रजा का होना आवश्यक होता है। वर्ण धर्म के

---

[17] महाभारत 12/284/31–4
[18] रामायण 1/6/17, महाभारत 12/45/4
[19] महाभारत 12/286/120
[20] शस्त्री रघुवीर पू0नि0पृ0 74
[21] महाभारत, 12/60/7–8 मनु0 10/63, मनु ने दुःख न देना, सत्य बोलना, अन्यायपूर्वक पराया धन, ग्रहण न करना, पवित्र रहना तथा इन्द्रिय निग्रह चारों वर्ण का धर्म कहा है।
[22] रामायण 2/67/32
[23] महाभारत, 12/15/35
[24] वही 12/79/34–36

समुचित पालन के वर्ण संकरता के कारण विभिन्न विकृतियों वाले लोग उत्पन्न होते हैं।[25]

चारों वर्ण के कर्मों के विषय में कहा गया है कि बुद्धि विचार कर किये कर्म श्रेष्ठ, बाहुबल से किए गए कर्म मध्यम तथा जंघा से किये जाने वाले कार्य अधम और भार ढोने के कार्य महान अधम होते हैं।[26] इस विचार के माध्यम से वणप्रें के श्रेष्ठताक्रम को व्यक्त किया गया। यह भी कहा गया कि क्षत्रिय बल के कारण ब्राह्मण मन्त्र के कारण, वैश्य धन के कारण तथा शूद्र अवस्था के कारण ही बड़े तथा श्रेष्ठ कहे जाते हैं।[27]

महाकाव्यों में चारों वर्ण के महत्व प्रदान किया गया।[28] पारस्परिक सहयोग, समर्थन तथा स्वकर्म करने से ही चारों वर्ण का विकास तथा उनकी उन्नति एवं सुरक्षा सम्भव है, इसीलिए इनको एक साथ रखा गया।[29] मौर्योत्तरकाल में वर्ण व्यवस्था जन्मना और कर्मणा दोनों रही है जिससे स्पष्ट होता है कि पूर्वकालीन विचार कर्म को महत्व दिया जा रहा था किन्तु जन्मना होने की भावना भी थी। कर्म और पुनर्जन्म के समन्वय के कारण ही दोनों वर्ण व्यवस्था के अंग हो गये।[30] यहाँ उच्च वर्णों द्वारा अपने लिए विशेषाधिकार की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है।[31]

मनुस्मृति में उल्लेख मिलता है कि चारों वर्ण के अलग–अलग नामों की व्यवस्था की गयी। इस प्रकार ब्राह्मण का नाम मंगलमय सूचक, क्षत्रिय का रक्षा

---

[25] वही 12/91/31–32
[26] वही, 5/35/65
[27] वही, 5/165/15, 12/282/21
[28] वोरा, डी0पी0 इबोल्यूशन ऑव मॉरल्स इन दि इपिक्स, बम्बई, 1966, पृ0 125
[29] थापर, रोमिला, इण्डियन सोसाइटी हिस्टारिकल प्राविन्स, दिल्ली 1974 पृ0 98
[30] सिंह, रणजीत पू0नि0पृ0 96
[31] डी0एन0झा0 प्राचीन भारत : एक रूपरेखा, हिन्दी अनुवाद दिल्ली 1980, पृ0 28

सूचक, वैश्य का धनमय अर्थात् पुष्टिसूचक तथा शूद्र का निन्दा अर्थात् दासत्व सूचक होना चाहिए।[32]

मनु ने चारों वर्ण से अलग–अलग ब्याज लेने का विचार व्यक्त किया। ब्राह्मण से दो, क्षत्रिय से तीन, वैश्य से चार तथा शूद्र से पाँच पण का दण्ड लेना चाहिए।[33] मनु ने चारों वर्ण के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि अपने वर्ण कर्म को न करने से शत्रुओं की दासता प्राप्त होती है।[34] इस प्रकार चारों वर्ण का सामाजिक कार्यों के लिए नियंत्रित करने का प्रयास मौर्योत्तर काल में किया गया, जो ऐतिहासिक आवश्यकता थी। अग्रिम पंक्तियों में चारों वर्णों के विषय में सविस्तार वर्णन किया जा रहा।

ब्राह्मण –

मौर्यकाल में जैन एवं बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण ब्राह्मण वर्ण की पर्याप्त क्षति हुई जिसके कारण ब्राह्मणों की स्थिति तथा उच्चता को आघात लगा। इसी कारण ब्राह्मणों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ रखने और उच्च बनाने का विचार प्रस्तुत किया। समकालीन ब्राह्मण शासक पुष्पमित्र शुंग ने उसे राजनीतिक संरक्षण प्रदान कर गतिमान किया। मौर्योत्तर काल में भी ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुख[35] से बताकर ब्राह्मणों को ही तीनों वर्ण की सन्तानों की सृष्टि करने का श्रेय दिय गया। [36] इस युग के विचारकों के अनुसार केवल ब्राह्मण ही तीनों वर्ण को

---

[32] मनु0, 2/31–32, मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रिस्य बलास्वितम्। वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुंगुप्सितम्।।

[33] वही 8/142

[34] मनु0 12/70

[35] महाभारत 12/73/4

[36] महाभारत 12/60/41

यज्ञ करा सकते थें।[37] क्योंकि ब्राह्मण से यज्ञ की उत्पत्ति होती है और ब्राह्मण में ही पूरा अर्पित हुआ करता है।[38]

इन्द्र ने मतंग से कहा था कि जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है और जो पुणयात्मा नहीं है, उनको ब्राह्मणत्व की प्राप्ति असम्भव है।[39] ब्राह्मणों का बल वेद बताया गया है।[40] सत्व गुण से सम्पन्न ब्राह्मणों का असत्य सत्व गुण निष्ठ हुआ है।[41] महाकाव्यकालीन समाज में 'ब्राह्मण' का मान और सम्मान समाज में पहले ही की तरह था। ब्राह्मण को परमपुरुष के मुख से उत्पन्न मानकर उसकी श्रेष्ठता स्वीकार्य कि गई थी। उसकी सर्वोच्चता, उदारता और महानता भूमिचर देवता के रूप में थी।[42] ब्राह्मण को ज्ञान, विद्वता, शिक्षा के दान, त्याग तथा धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने के कारण समाज में उसे विशेष सम्मान प्राप्त था। विद्वान या विज्ञान, प्राकृत या संस्कृत चाहे जैसे भी हो जिस अवस्था में होता था, उसका अनादर नहीं किया जाता था।[43] समाज में ब्राह्मण की प्रतिष्ठा उसके त्याग और तपस्या के कारण थी। धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञों को सम्पन्न करके वह समाज की मंगल–कामना करता था तथा दैवी आपदाओं और बाधाओं से समाज की रक्षा करता था। समाज का सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष उसी की सेवाओं के कारण था। अपने विभिन्न उच्चस्तरीय कार्यों के कारण वह समाज का महत्वपूर्ण अंग बन गया था तथा उसे अनेक विशेषाधिकार

---

[37] वही, 12/60/44
[38] वही, 12/260/33।
[39] वही 13/28/26–27
[40] महाभारत 5/43/290,12/308/73
[41] वही 12/284/2,
[42] महाभारत, 12.39.1
भूमिचरः देवाः
[43] वही 3.200.8

भी प्राप्त हो गये थे। ब्राह्मण का वध नहीं किया जा सकता था।[44] और न उसे कर लिया जा सकता था।[45]

द्रोणाचार्य का विचार था कि व्रताचरण करने वाले ब्राह्मण ही ब्रह्मस्त्र जान सकता है।[46] परशुराम ने भी कहा था कि ब्रह्मस्त्र ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी जाति के पुरुष के हृदय में स्थिर नहीं रहता।[47] ब्राह्मणों में जो श्रेष्ठ हों उसका सम्मान करना चाहिए, किन्तु दूसरे की निन्द भी नहीं करनी चाहिए।

महाभारत के अनुसार अध्यापन, संयम और तप ब्राह्मणों के कार्य थे। महाभारत में ऐसे उदाहरण दिए हैं जिससे स्पष्ट होता है कि अच्छे कर्म करने से निम्न वर्ण के व्यक्ति का भी अगले जन्म में उच्च वर्ण में जन्म होता है। इस प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति से आशा की जाती है कि वह अपने वर्ण के उपयुक्त जो भी कर्म हो उन्हीं को यथाशक्ति सुचारु रूप से करे, इसी में कल्याण है। जो व्यक्ति अपने वर्ग के अनुरूप कर्म नहीं करता वह अगले जन्म में उस वर्ण से नीचे वर्ण में जन्म लेता है।[48] पराशर ने कहा कि प्रतिगृह, याजन तथा अध्यापन ब्राह्मणों के विशेष धर्म है। [49] अनुशासन पर्व में भी अध्ययन'अध्यापन, यजन–पाठन,दान तथा प्रतिगृह इन छः कर्मों को करने वाला ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[50]

---

[44] महाभारत 1.28.3, अन्ध्यः सर्वभूतानां ब्राह्मणोहानलोपमः।
[45] वही, 12.76.19 – अब्राह्मणानां वित्तस्य स्वामि सजेति वैदिकम्।
[46] महाभारत, 12/285/11–12
[47] वही, 12/3/31
[48] महाभारत वनपर्व, अध्याय 206 और 207: अनुशासन पर्व 143, 1–47
[49] महाभारत 5/29/21
[50] वही, 13/23/36, 13/129/6–8

ब्राह्मणों का स्वाध्यायशील होना, यज्ञ करना, सनातन धर्म तथा शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक दान देना प्रशस्त धर्म कहा गया है।[51] गृहस्थ ब्राह्मण के लिए यह भी कहा गया है कि वह घर में ही रहकर प्रतिदिन संहिता पाठ और शास्त्रों का स्वध्याय करे किन्तु अध्ययन को जीविका का साधन न बनाये।[52] महाभारत में कहा गया है कि ब्राह्मणों को उनके आचरण के आधार पर ही ब्राह्मण कहा जा सकता है, और यदि शूद्र सदाचारी हो तो उसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हो जाता है।[53] युधिष्ठिर ने भी मत व्यक्त किया है कि वही ब्राह्मण है जिसमें सत्य, दया, क्षमा, सदाचार, करुणा और त्याग के गुण विधान नहीं।[54] जिस शूद्र में ये गुण विद्यमान हो वह शूद्र नहीं है और जिस ब्राह्मण में गुण नहीं वह ब्राह्मण नहीं है। इसका अर्थ यह है कि इस काल में कुछ व्यक्ति जाति के सिद्धान्त को महत्व देते थे किन्तु अधिकतर व्यक्ति अब भी वर्ण के सिद्धान्त को जिनमें गुण और कर्म का महत्व है अधिक मान्य समझते थे।

महाभारत में कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो कि इससे स्पष्ट होता है कि वे अपने कर्म के द्वारा मनुष्य जन्म के सिद्धान्त पर निर्धारित, अपने वर्ण को बदल सकते थे। विश्वामित्र का जन्म क्षत्रिय परिवार में हुआ था, अपितु अपने गुणों और कर्मों के कारण वे ब्राह्मण कहलाये। इसी प्रकार परशुराम का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था किन्तु व्यवसाय के कारण वे क्षत्रिय कहलाए। गीता में गुणों में सत्व, रज्स और तम्स की गणना की गई है। जिस व्यक्ति में सत्व गुण की

---

[51] महाभारत 13/129/9

[52] महाभारत 13/131/56 मनु0 2/173

[53] अनुशासन पर्व 143–55. सर्वोऽयं ब्राह्मर्णो लोके वृत्तेन तु विधायते। वृते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति।।

[54] वनपर्व 180.21 सत्यं दानं क्षमाशीलम् अनृशस्यं तपो घृणा। दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः।।

प्रधानता होती है वह शांति का जीवन व्यतीत करता है, यह गुण ब्राह्मण को प्रदर्शित करता है। महाभारत में एक स्थान पर कहा गया है कि ब्राह्मण चार आश्रमों का पालन करता है। अन्य तीन वर्णों के लोग सभी आश्रमों का अनुसरण नहीं करते।[55] सम्पूर्ण धर्म को जानने वाले जो लोग ब्रह्मचर्याश्रम में स्थित होकर ऋषियों की स्वाध्याय परम्परा की सदैव रक्षा करते हैं, देवता उन्हें ब्राह्मण कहते हैं।[56] यह भी विचार व्यक्त किया गया है कि वेदज्ञान से शून्य ब्राह्मण को दान नहीं देना चाहिए।[57]

अश्वमेध पर्व में स्पष्टतः यजन, अध्यापन तथा दान ब्राह्मण की जीविका का साधन बताया गया है। अध्ययन, यज्ञानुष्ठान और दान धनोत्पार्जन के लिए आवश्यक था।[58] इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों का धर्म वर्णधर्म का वर्णन करना बताया गया है।[59] एक अन्य स्थान पर वेद पढ़ना तथा व्रत करना, समस्त प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव रखना दान देना और लेना, अध्ययन और तपस्या बताया गया है। महाभारत में उल्लेख है कि वेदों के अनुसार तपस्या ब्राह्मण का नित्य धर्म है।[60] तप और त्याग ब्राह्मणों का धर्म बताकर परलोक में धर्मजनित फल देने वाला कहा गया है। तप और मन्त्र का बल सदैव ब्राह्मणों में उपस्थित होता है। ब्राह्मण को सदैव उपवासी, ब्रह्मचारी, मुनि और वेदों का स्वाध्यायी होना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मचर्य के बल से वह सम्पूर्ण पापों को भस्म करता है।[61]

---

[55] वही 12/62/2
[56] वही 11/26/4
[57] महाभारत 12/37, 31 तपस्या, स्वध्याय सदाचार से हीन व्यक्ति दान नहीं पचा सकता है। वही, 12/37/34
[58] महाभारत 13/29/11, 14/45/23
[59] महाभारत 4/20/28
[60] महाभारत 12/321 /3–4.
[61] वही 13/74/36

वेदाभ्यास, पवित्रता, तप और अहिंसा से पूर्वजन्म की जाति का ज्ञान तथा सुख प्राप्त होता है।[62]

यदि ब्राह्मण बारह महाव्रतों– धर्म, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, तप, मत्सरता का अभाव, लज्जा, सहनशीलता, किसी का दोष न देखना, यज्ञ करना, धैर्य और शास्त्रज्ञान का पालन करे तो वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने अधीन कर सकता है।[63] उपयुक्त वैदिक कर्म द्वारा ब्राह्मण उत्तम यज्ञ तथा स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। यहाँ विचार को पुष्ट बनाने के लिए यह भी कहा गया है कि सैकड़ों लोगों का मनोरथ पूरा हुआ है। इन्द्रिय–संयम को ब्राह्मणों का प्राचीन धर्म बताते हुए यह भी कहा गया है कि यदि इसके अतिरिक्त वह वेदों का स्वाध्याय करे तो उनके सभी कर्मों की पूर्ति हो जाती है।[64]

यदि ब्राह्मण अपने वर्ण, आश्रम, धर्म, कर्म का पालनकर मन को वश में रखकर बाहर भीतर से शूद्र, उदार तथा तपस्या परायण रहे तो अविनाशी लोक को प्राप्त करता है।[65]

अपने धर्म का त्याग करने वाला ब्राह्मणत्व निन्दनीय था। वेद–ज्ञान से शून्य और शास्त्र–ज्ञान से रहित ब्राह्मण काष्ठहस्ती या अचर्मभृग या पुरुषत्वहीन या अग्निहीन ग्राम अथवा जलरहित कुएँ के सदृश था।[66]

---

[62] मनु0 4/148–149
[63] वही 5/43/12–13
[64] वही 12/60/9
[65] महाभारत 12/62/6–7
[66] वही, 12.36. 41–48 निष्कारणं स्मृतं दत्तं ब्राह्मणे ब्रह्मवर्जिते। भवेदपात्रदोषेण न चात्रास्ति विचारणा।। ग्रामों धान्यैर्यथा शून्यो यथा कृपश्च निर्जलः। यथा हतुमनग्नौ च तथैव स्पान्निराकृतौ।।

इस प्रकार वर्ण–विपरीत कर्म करने वाले ब्राह्मण के शूद्र से भी निम्न मानकर निन्दा की गई है। क्षत्रिय और वैश्य के कर्म अपनाने वाला ब्राह्मण कुत्ता और भेड़िया माना गया था।[67] इस बात से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में वर्ण–विरूद्ध कर्म को प्रश्रय नहीं दिया गया था और अपने कर्म को निष्ठापूर्वक करने का निर्देश दिया गया था। ब्राह्मणों के लिए वेदध्ययन और तपश्चर्या अत्यन्त आवश्यक था।[68]

ब्राह्मणों के राजनीतिक विशेषाधिकार में महाकाव्यकाल में भी पुरोहित का आदर और सम्मान पूर्ववत था। वह राज्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यों में अपना सहयोग प्रदान करने लगा था। राजा का महान परामर्शदाता था तथा अपनी समुचित सलाह से प्रशासन में उसे मार्ग–दर्शन करता था। राजा का योगक्षेम पुरोहित के अधीन माना जाता था।[69] ब्राह्मणों के लिए दण्ड व्यवस्था का भी प्रावधान मिलता है। उसकी अवध्यता महाभारत में भी स्वीकार की गई है।[70]

मनु ने ब्रह्महत्या जैसे कार्य को महापातक कार्य माना है।[71] पुराणों में भी ब्राह्मणहन्ता को नरकगामी कहा गया है।[72] यहाँ तक की पापी ब्राह्मण की भी हत्या न करने का विधान किया गया था।[73] महाकाव्य काल में बौद्धिक और शैक्षणिक विशेषाधिकार में ब्राह्मण का स्वाध्याय, चारित्र आदि गुणों से विहीन ब्राह्मण दान–प्रतिगृह के योग्य नहीं समझा जाता था। मनु के युग तक आकर जन्मना ब्राह्मण अविद्वान होते हुए भी पूजनीय माना गया उसकी श्रेष्ठता का

---

[67] रामायण 7, 26–33
[68] महाभारत, 2.12.24
[69] महाभारत शांतिपर्व, 74.1
[70] महाभारत, 12.76.19 अब्राह्मणानां वित्तस्य स्वामिराजितिवैदिकम्।
[71] मनु0, 11.54 ब्राह्महत्या सुरापानं स्तेय गुर्वङ्गः नागमः। महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चपि तै0 सह।।
[72] विष्णु पुराण, 2.6.9 सुरायो ब्रह्महर्ता सुवर्णस्य च सूकरे। प्रयान्ति नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै।।
[73] मत्स्य पुराण, 227–214 ब्राह्मणं नैव हन्यात्तु सर्वपापेष्वास्थितम्।

आधार कर्म न होकर जन्म हो गया। निन्दित कर्म करने वाला ब्राह्मण भी जन्म के आधार पर देवता के समान पूज्य कहा गया और समाज में प्रतिष्ठित माना गया।[74]

मनु के अनुसार जाति की विशिष्टता से उत्पत्ति स्थान (ब्रह्मा के मुख) की श्रेष्ठता से अध्ययन–अध्यापन एवं व्याख्या आदि के द्वारा नियम (श्रुति–स्मृति–विहित आचरण) के धारण करने से और यज्ञोपवीत संस्कार आदि की श्रेष्ठता से सब वर्णों में ब्राह्मण ही वर्णों का स्वामी माना जाता था।[75] मनु ने यह व्यवस्था दी है कि अति निर्धन राजा को भी श्रोत्तिय (वेदपाठी ब्राह्मण) से कर नहीं ग्रहण करना चाहिए ताकि देश में रहता हुआ वह भी भूख से पीड़ित न हो।[76] ब्राह्मण धर्म का सेतु, सबका पथ–प्रदर्शक नेता, सनातन और यज्ञ–निर्वाहक होता है। उसका आश्रय लेकर ही सारी प्रजा जीवन धारण करती है। ये बन्धन मुक्त, निष्पाप, अपरिग्रही तथा सम्मान पाने के अधिकारी है।

क्षत्रिय –

क्षत्रिय–वर्ण शासक–वर्ग, संरक्षक वर्ग और योद्धा वर्ग था। उसका प्रमुख कार्य चतुर्वर्णों का संरक्षण करता था।[77] इस काल के कुछ विचारकों ने क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजाओं से बतायी है। किन्तु रामायण में क्षत्रिय की उत्पत्ति हृदय से बतायी गयी, जिस प्रकार शरीर को नियंत्रित करने का काम हृदय करता है, और उसके गतिशील होने पर ही शरीर और जीवन का अस्तित्व है, क्षत्रिय का

---

[74] वही, 9.3.19 एवं यद्यप्यनिष्टषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु। सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमंदैवतंहितत्।।

[75] मनु0 10.4 ब्राह्मणाः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु प×चमः।।

[76] मनु0 7.133 त्रियमाणोऽप्यादद्दीत न राजा श्रोत्तियात्करम्। न च सुधाऽस्य संसीदेच्छत्रियो विषयेवसन्।।

[77] रामायण 2.106. 18–21 – धर्मेण चतुरौ वर्णान् पलायने क्लेशमाप्नुहि।

भी समाज में वैसा ही स्थान और महत्व था। मौर्योत्तर–काल में भी उनका कर्तव्य प्रजा–रक्षण, दान, यज्ञ, वेदाध्ययन, उग्रता, विषयों में अनासक्ति तथा दण्ड–धारण बताया गया है।[78] महाभारत में यह विचार व्यक्त किया गया है कि शत्रुओं पर चढ़ाई करना तथा राजलक्ष्मी से कभी सन्तुष्ट न होना, क्षत्रियों का धर्म है।[79] एक अन्य स्थान पर इन्द्रिय, संयम, स्वाध्याय, अग्निहोत्र–कर्म, यज्ञोपवीत धारण, न्याय की रक्षा तथा सत्य भाषण भी उनका धर्म बताया गया है।[80] क्षत्रिय युद्ध भी करता था। धर्म के निर्मित युद्ध करना क्षत्रिय के लिए श्रेयस्कर माना गया था।[81]

क्षत्रिय कर्म में उनका प्रधान कर्म असाधुओं पर अंकुश रखना और कर्मचारियों की रक्षा करना, संरक्षण करना उनका प्रधान कर्म था।[82] स्वर्ग के उद्‌देश्य से ही क्षत्रिय रण में दीक्षित होकर शत्रुओं को परास्त करते हैं। इसी उद्‌देश्य से रण–यज्ञ की दीक्षा लेने वाले क्षत्रिय के अधिकार ब्राह्मणों से कम थे, ओर समाज में उनका स्थान भी ब्राह्मणों की अपेक्षा कम था। गुण, शौर्य तेज, घृत्ति, दाम्य, युद्ध से अपलायन दान और ईश्वरभाव उनके क्षात्रकर्म के स्वाभाविक लक्षण थे।[83] इस प्रकार क्षत्रिय के अधिकार ब्राह्मणों से कम थे, और समाज में उनका स्थान भी ब्राह्मणों की अपेक्षा कम था। गुण, शौर्य तेज, घृत्ति, दाम्य, युद्ध से अपलायन दान और ईश्वरभाव उनके क्षात्रकर्म के स्वाभाविक लक्षण थे।[84] गौतम के कथनानुसार क्षत्रिय का तीन वेदों में अधीन होना बतलाया गया है, तथा शासन कार्य के लिए राजा को वेद, धर्मशास्त्र, उपवेद और पुराणों का ज्ञान

---

[78] महाभारत 1/11/16, मनु0 1/89
[79] महाभारत, 12/23/9–12
[80] वही, 13/128/49–53
[81] महाभारत, 6.122.37 धर्म्याद्वि युद्धच्छेयोऽन्यत न विद्यते।
[82] वही, 5.139, 19–22 नियन्तरमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणम् ईदृशंक्षत्रिय सूते वीरं सत्यपरा मम्।
[83] वही, 2/20/15
[84] वही, 6.42, 43, शौर्य तेजोधृतिर्दाभ्यंयुद्धिचाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्मस्वभावजम्।।

प्राप्त करना अनिवार्य माना गया है।[85] महाभारत में कहा गया है कि वह अध्ययन और यज्ञ तो कर सकता था, अध्यापन और याजन नहीं। उसका प्रधान कर्म था प्रजा का पालन करना, चोर–डाकुओं का वध करना और युद्ध के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।[86] क्षत्रिय वर्ण को भी अध्ययन करने का विधान किया गया था, किन्तु यह मान्य सर्वप्रचलित नहीं था। रामायण को अनेक स्थानों पर उसे अध्ययन और यजन से अलग किया गया है। क्षत्रिय के लिए यह निर्देश था कि याजक होने पर वह देवता यजमान का उत्पन्न ग्रहण करे।[87] ब्राह्मणों की भाँति क्षत्रियों को भी अध्ययन का अधिकार था।

क्षत्रियों का धनुष ही यूयः, करधनी प्रत्यंचा, बाण स्रुक, तलवार स्रुवा, रक्त घृत, रणवेदी, युद्ध अग्नि तथा चारों घोड़े ऋत्विज होते हैं। [88] युद्धभूमि में रक्तरूपी जल, केशरूपी तृण, हाथी रूपी पर्वत, ध्वजरूपी वृक्षों से युक्त रक्त को नदी बहा देने वाला ही क्षत्रिय–धर्म का ज्ञाता है। भीष्म ने कहा था कि युद्ध से विना घाव वापस आने वाले क्षत्रिय की प्रशंसा नहीं होती।[89] उचित मार्ग पर चलने वाले क्षत्रियों के हृदय में स्वजनों पर भी क्षमा, दया करुणा और कोमलता आदि गुणों का भाव नहीं रहता।[90] अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा था कि क्षत्रिय का हृदय वज्र के समान कठोर होता है।

क्षत्रिय को उग्र तथा मृदु दोनो होने चाहिए। श्रीकृष्ण ने विचार व्यक्त किया था कि क्षात्रधर्म में प्रवृत्त होकर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए प्राप्त

---

[85] गौतम धर्म सूत्र, 11.3, 11.9

[86] महाभारत, 12.60, 13–20 क्षत्रियस्यापि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यानि भारतः दयाद् राजन् न याचेत यजेत न च याजयेत।।

[87] वही वालकांड, 56.13–14

[88] वही, 12/24/27–28

[89] वही, 12/60/16

[90] महाभारत, 12/1012

मृत्यु उत्तम होती है।[91] यज्ञानुष्ठान, राज्य और धर्म की रक्षा करने वाला राजा देवलोक पाता है, वेदों का ज्ञान शास्त्राध्ययन, चातुर्वर्ण्य रक्षा तथा स्वधर्म की स्थापना करने वाला राज सदैव सुखी रहता है। क्षत्रिय को चाहिए कि वह धर्म का उल्लंघन करने वाले धर्मद्रोही का दोनों भुजाओं से दमन करे।[92] राजधर्म ही प्रधान है, क्योंकि इसी से सभी वर्णों का पालन होता है। राजधर्म के मूल में क्षत्रिय की सर्वाधिक अहम भूमिका होती है।

वैश्य –

इस काल में 'वैश्यों' की उत्पत्ति की पूर्ववर्ती विचारधारा का समर्थन किया गया है।[93] जबकि दूसरी विचारधारा के अनुसार वैश्यों की उत्पत्ति उदर से बतायी गयी है।[94] महाभारत में 'वैश्य' वर्ण के लिए कहा गया है कि वह समाज का ऐसा वर्ग था जिसने अध्ययन यजनादि कर्मों का परित्याग कर कृषि–कर्म और गो–पालन का अनुसरण किया वह वैश्य हो गया।[95] इस वर्ग का प्रधान उद्देय था धनार्जन करना। महाभारत में भृगु का विचार है कि वेदाध्ययन से सम्पन्न होकर पशुपालन, कृषि, वाणिज्य करने वाला तथा अन्न संग्रह में रुचि रखने वाला ही योग्य वैश्य होता है।[96] भीष्म का विचार था कि दान, अध्ययन यज्ञ, पवित्रतापूर्वक धन का संग्रह करना वैश्यों का कर्तव्य है।[97]

---

[91] शांतिपर्व, 5/29/18
[92] वही 12/34/5 13/47/43
[93] मनुस्मृति 1/31
[94] महाभारत 12/306/87
[95] वही, 12.188, 1–18, गोम्यो वृत्तिं समास्थाय पिताः कृष्योप जीवितः। स्वधर्मान्नानुतिषृन्ति ते द्विजाः वैश्यतां गताः।।
[96] महाभारत 12/189/6
[97] महाभारत 12/60/21

रामायण में भी वैश्यों का गोरक्षा से जीवन–निर्वाह करने का उल्लेख मिलता है।[98] महाभारत में उल्लेख है कि वैश्य को उद्योग से धन मिलता है तथा वे कृषिकर्म में लगे वैश्यों में लक्ष्मी निवास करती है।[99] इस प्रकार से वे कृषिकर्म को अधिक महत्व दिया गया है। अपने कर्म में लगा वैश्य धनदान करने से महत्वपूर्ण पद प्राप्त करता है। वैश्य सत्यवादी, अहंकारशून्य, शान्ति के साधनों का ज्ञाता, स्वाध्यायपरायण, पवित्र यज्ञों द्वारा यजन करने वाला और जितेन्द्रिय होता है। उसे ब्राह्मण का सत्कार, समस्त वर्णों की उन्नति तथा गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए, अवशिष्ट अन्न का भोजन त्रिविधि अग्नियों की मन्त्रोंच्चारपूर्वक परिचर्या, तथा अतिथ्य स्वीकार करना चाहिए। ऐसा करने वाला वैश्य ही द्विज होता है और वर्णोन्नति द्वारा क्षत्रिय कुल में जन्म लेता है।[100]

अपने वर्णधर्म के पालन से कृतकृत्य वैश्य राजा की आज्ञा प्राप्त करने के बाद ही क्षत्रियोचित वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर सकता था।[101] स्वधर्म का पालन करने वाला वैश्य भिक्षावृत्ति अपना सकता था।

वैश्य के व्यापार से सम्बद्ध के विषय में यह विचार व्यक्त किया गया है कि राजा को चाहिए कि वह पशु तथा स्वर्ण के लाभ का पचासवाँ भाग कृषक, वैश्यों से और धन छठा, आठवाँ भाग के रूप में प्राप्त करे।[102] इस प्रकार स्पष्ट है कि मौर्योत्तर काल में वैश्यों के आर्थिक दृष्टि से समाज में महत्व को पूरी तरह व्यावहारिक स्तर पर स्वीकार किया गया था।

---

[98] रामायण 2/67/18
[99] महाभारत 13/6/16, 13/96 (गीता प्रेस)
[100] वही 13/131/30–40
[101] वही 17/63/15
[102] मनुस्मृति 7/130–131

शूद्र –

महाभारत में कहा गया है कि वेद और सदाचार का परित्याग कर सब कुछ खाने में अनुरक्त तथा बाहर–भीतर से अपवित्र–व्यक्ति ही शूद्र कहलाता है। भीष्म के विचार से तीनों वर्ण की सेवा के लिए ही शूद्रों की सृष्टि हुई।[103] इससे उन्हें सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है, इसीलिए सेवा करना ही उनका कर्तव्य तथा धर्म है। शूद्रवर्ण समाज का सबसे अधिक निम्न वर्ग था। ऋग्वेद की भांति रामायण में भी उल्लेख हुआ है कि शूद्र वर्ण परमपुरुष के पदों से उत्पन्न हुआ।[104] अपने कर्म में लगा रहने वाला शूद्र भीष्म के विचार से मृत्यु के बाद स्वर्ग जाता है।[105] स्वामी द्वारा त्यागने के बाद भी शूद्र सेवाकार्य से मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि सेवा ही उसका स्वभाव है।

एक अन्य स्थान पर यह बतलाया गया है कि शूद्र ब्राह्मणों की सेवा तथा वन्दना करे। वेदों का स्वाध्याय तथा यज्ञ उसके लिए निषिद्ध है। ब्राह्मण सेवा ही शूद्र का विशिष्ट धर्म है। उसे जीविका के लिए क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की सेवा करनी चाहिए।[106] यही द्विजातियों को भी चाहिए कि वे शूद्रों का भरण–पोषण करे, क्योंकि 'शूद्र' भरण–पोषण करने योग्य कहा गया है। उसे अपने उपयोग में लाया गया वस्त्र तथा उक्त वस्तुएँ धर्मतः शूद्रों की ही सम्पत्ति है। शूद्र को किसी युग में तपस्या का अधिकार नहीं था। महाभारत में उल्लेख है

---

[103] महाभारत 12/189/7
[104] रामायण 3.14, 24–30
[105] वही 13/74/21
[106] वही 10/121

कि शूद्र को सन्यास से नहीं, बल्कि साधु–महात्मा की सेवा से उत्तम लोक प्राप्त हो जाता है।[107]

मौर्योत्तर विचारकों की दृष्टि से शूद्र को किसी भी प्रकार का धन–संग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि धन पाकर वह महान पाप में प्रवृत्त हो जाता है और श्रेष्ठ पुरुषों को अपने अधीन रखने लगता है।

इस काल में सम्पूर्ण वर्ण–व्यवस्था के सन्दर्भ में परस्पर विरोधी विचार प्राप्त होते हैं जिसमें जन्मना तथा कर्मणा दोनों का उल्लेख है। जन्मना विचार पूर्वकाल से चले आ रहे थे जबकि कर्मणा को इस काल का विचार कहा जा सकता है। वर्ण–व्यवस्था के स्थिरीकरण के साथ–साथ जन्मना, कर्मणा के बीच संतुलन स्थापित किया गया जो चिन्तन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण था।

[107] महाभारत 13/10/15

मौर्यकाल से लेकर मौर्योत्तर काल तक वर्ण–व्यवस्था का विकास

(300 ई0पू0 से 300 ई0 तक)

(मौर्यवंश, शुंग, सातवाहन शक कुषाणकाल)

वर्ण व्यवस्था –

मौर्य–काल में कौटिल्य ने दृढ़ता के साथ वर्ण–व्यवस्था का समर्थन किया और तीनों वेदों को आधार माना है। कौटिल्य की वर्ण–व्यवस्था में श्रम का विभाजन ही मुख्य था। इसमें श्रम का विभाजन और उत्तरदायित्वों का बँटवारा सर्वमान्य था। राजा और समाज में सभी व्यक्तियों को वर्ण–व्यवस्था के सामाजिक ढाँचे की रक्षा करने के निर्देश दिये, साथ ही व्यवस्था का पालन न करने वाले को दण्ड का भी विधान किया गया। कौटिल्य के विचारों से स्पष्ट है कि वे परम्परावादी या रूढ़िवादी नहीं थे। वे ऐसे समाज की कल्पना मात्र से चौंक जाते हैं जिसमें समाज के विभिन्न व्यक्ति और समुदाय अपने जीवन की योजना न बनाये और समाज के हित का कार्य न करे।[108]

चार वर्णों के अलग–अलग कर्तव्य थे जिनके माध्यम से उन्हें एक दूसरे से सम्बन्धित करके सामाजिक बन्धन में बाँधा गया था।

कौटिल्य का मत था कि यदि स्वधर्म का पालन न किया जाय तो वर्णसंकरता होकर लोकनाश कर देगी।[109] काम, क्रोध, मान, मद, हर्ष, लोभ के कारण व्यक्ति अपने धर्म से विचलित होता है जिससे वर्णधर्म के पालन में कठिनाई आती है। इसीलिए राजा को निर्देश था कि वह वर्णधर्म का पालन न

---

[108] दीपंकर, कौटिल्यकालीन भारत, लखनऊ 1968 पृ0 64 ।
[109] अर्थशास्त्र 1/3/15 तस्यातिक्रमें लोकः संकरादुच्छिद्येत।

करने वाले को उचित दण्ड ही दे, क्योंकि तीक्ष्ण दण्ड उद्वेग उत्पन्न करता है और सम्यक् दण्ड देने वाला पूज्य होता है।[110] चारों वर्णों का रक्षक होने के कारण ही राजा को प्रवर्तक कहा गया है।

वर्ण–व्यवस्था को स्थिर करने के उद्देश्य से कौटिल्य ने कहा है कि वर्ण–व्यवस्था के सम्यक् रूप से पालन में लोक–कल्याण निहित है। इसके स्थापित होने पर जगत् प्रसन्न रहता है और कभी दुःखी नहीं रहता, साथ ही वर्णाश्रम–व्यवस्था के पालन करने से मनुष्य इस लोक में सुखपूर्वक जीवनयापन करता है, तथा मृत्यु के बाद मोक्ष को प्राप्त होता है।[111] राजा को यह निर्देश दिया कि अपना भवन–निर्माण कराते समय अथवा राज्य के किसी भाग को बसाते समय चारों वर्णों के लिए वहाँ की भूमि की उपयोगिता पर भी ध्यान दे।[112]

प्रत्येक वर्ण के लिए अलग–अलग आचरण प्रतिपादित था। वर्ण–व्यवस्था के कुछ ऐसे कर्तव्य थे जो सम्पूर्ण समाज के विकास एवं उत्थान के लिए थे। इस प्रकार वर्ण–व्यवस्था के माध्यम से सम्पूर्ण समाज को सम्पूर्ण समाज से सम्बद्ध समझे और उसके उत्थान एवं विकास के लिए क्रियाशील रहना अपना कर्तव्य समझे।

ब्राह्मण –

यह समाज का सर्वाधिक पवित्र एवं सम्मानित वर्ग था, जिसकी गणना वर्ण–व्यवस्था में सर्वप्रथम की जाती थी। मौर्य–काल में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर

---

[110] 1/4/11–13– अर्थशास्त्र
[111] 1/3/14– अर्थशास्त्र स्वधर्मः स्वर्गायानन्तव च।
[112] अर्थशास्त्र 2/4/6 प्रवीर वास्तुनि राजनिवेश्चातुर्वर्ण्य समाजीवे।

आघात हो रहा था और जैन एवं बौद्ध अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हो रही थी। अशोक ने सर्वत्र ब्राह्मणों के प्रति उपेक्षा व्यक्त करता है।[113] मौर्यकाल से पहले तक सामाजिक गठन कठोर नहीं था। एक वर्ण को छोड़कर दूसरे वर्ण में पहुँचने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।[114]

ब्राह्मणों को विशेषाधिकार के रूप में राजनीतिक, धार्मिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक, आदि सभी क्षेत्रों में अनेक सुविधाएँ प्राप्त थी। जिससे ब्राह्मण वर्ण सभी वर्णों में सर्वोपरि माने गए। कौटिल्य के अनुसार भारतीय राज्य की न्यायिक प्रक्रिया, बौद्धिक विविधता, सामाजिक गतिविधियां एवं धार्मिक क्रियायें आदि सभी कार्य ब्राह्मणों द्वारा संचालित की जाती थीं। प्रधानतः उसके छह कर्म नियत थे– वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना। ये कर्म उसके स्वधर्म के अन्तर्गत आते थे।[115] ब्राह्मण के प्रधान कर्म देश और समाज में उसका मान और सम्मान ऐसे नहीं था, अपितु समाज के प्रति उसके द्वारा किया जाने वाला त्याग और कर्तव्य इसका महत्वपूर्ण कारण था। अशोक ने अपने शिलालेख में ब्राह्मण ओर श्रमण का एक साथ उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण के प्रति समुचित व्यवहार न करके, उसकी उच्च्ता को नष्ट करके उस पर आघात किया गया तथा उसकी उच्चश्रेष्ठता और व्यापकता पर आपेक्ष किया गया है। शुंगवंश में ब्राह्मण धर्म के पुनः स्थापित होने पर इस प्रकार के प्रतिबंध विनष्ट हो गए थे। अर्थशास्त्र में चारों वर्णों और उनके सामाजिक वर्ण–व्यवस्था के कर्मों का उल्लेख हुआ है।[116]

---

[113] अशोक के शिलालेख–कालसी शिलालेख, गिरनार शिला लेख, द्रपृत्य पाण्डेय, राजबली।
[114] रिस डेविड्स, बुद्धिस्ट इंडिया पृ0 56.
[115] अर्थशास्त्र 1.3 स्वधर्मों ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं दानं प्रतिगृहश्चेति।
[116] अर्थशास्त्र, 4.1, 4.2, 4.22 राजनिवेशाश्चातुर्वण्यंसमाजीवे।

अशोक के पाँचवे शिलालेख से भी स्पष्ट होता है कि भिक्षुओं, ब्राह्मणों, गृहस्थों अनाथों तथा धर्मागामियों की सुरक्षा तथा सुख के लिए महामात्र नियुक्त किए गये थे।[117] ब्राह्मणों के राजनीतिक विशेषाधिकार में कौटिल्य ने राजमंत्रियों में पुरोहित को प्रधान स्थान दिया। कौटिल्य के अनुसार उत्तम कुल में उत्पन्न, शील, तथा सदाचार सम्पन्न सभी वेदों और व्याकरण इत्यादि वेदांगों में पारंगत, राजनीति शास्त्रों में निपुण और दैवी मानवी आपदाओं को अथर्ववेदोक्त मंत्रों द्वारा देने में कुशल ब्राह्मण व्यक्ति को ही राजा पुरोहित बनाए। उदाहरण जैसे– शिष्य गुरु को पुत्र पिता को तथा सेवक स्वामी को मानता है, ठीक उसी प्रकार राजा भी पुरोहित को अपना पूज्य मानकर उसका अनुसरण करे। यही उसका कर्तव्य होता है।[118] इसी प्रकार मनु ने भी राजा के मंत्रियों में एक ब्राह्मण मंत्री नियुक्त करने का उल्लेख करता है। राजा के न्यायिक निर्णयों में पुरोहित धर्मानुसार परामर्श दिया करता था जिससे न्याय प्रदान करने में वह सहायक बनता था। मनु के अनुसार राजा उन मंत्रियों में से विद्वान धर्माद्वियुक्त विशिष्ट एक ब्राह्मण मंत्री के साथ षड्गुण से युक्त श्रेष्ठ मंत्र की मंत्रणा करता था तथा उस पर पूर्ण विश्वास कर उसे सब कार्य सौंप देता था एवं उससे परामर्श और निश्चय कर राजा कार्य आरम्भ करता था।[119] मनुस्मृति में कहा गया है कि 'स्वधर्म निम्न होने पर भी श्रेष्ठ पर धर्म की अपेक्षा उत्तम है। शुंगकालीन संस्कृति में ब्राह्मण के प्रमुख कर्तव्यों में अध्ययन–अध्यापन, यजन–याजन दान एवं प्रतिगृह बताये गए हैं। ब्राह्मण मृत्यु दण्ड का अधिकारी नहीं था। यद्यपि ब्राह्मण शास्त्रसंगत आचरण

---

[117] अशोक शिला लेख, सं0 5

[118] अर्थशास्त्र 1.9 पुरोहित मुदितो पित कुलशीलं षड्ड्गे वेदे दैव निमित्तै।

[119] मुनस्मृति 7.58–59 सर्वेषां तु विशिष्टन ब्राह्मणेन विपश्चिता। मन्त्रयेत्परमं मंत्र राजा षाड्गुण्यसंयुतम।। नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निक्षिपेत। तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत्।।

नहीं करता था तो वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा खो देता था। शुंगकाल में ब्राह्मण धर्म का पुनर्जागरण काल भी माना जाता है। मनु के अनुसार यदि राजा स्वयं विवादों का न्याय नहीं कर पाता था तो वह उस कार्य को देखने के लिए ब्राह्मण की नियुक्ति करता था।[120] वह ब्राह्मण न्यायालय में अन्य सदस्यों के साथ को देखता था तथा विवादों का निर्णय करने में सहायक होता था।[121]

इसी प्रकार ब्राह्मणों के लिए दण्ड व्यवस्था अत्यन्त सरल थी। कौटिल्य के अनुसार किसी भी प्रकार का अपराध करने वाले ब्राह्मण को वध और ताड़नादि दण्ड नहीं दिया जाता था। वह जिस प्रकार के अपराध का दोषी होता था उसी को व्यक्त करने वाला चिह्न उसके ललाट पर अंकित कर दिया जाता था।[122] तपस्वी तथा वेदपाठी को दण्ड देने की अपेक्षा सती (गुप्तचर) के साथ घुमवाकर छोड़ देना ही पर्याप्त था।[123] पुरोहित की गलती पर ब्राह्मण होने के कारण उसका वध निषिद्ध बताया गया। इस प्रकार कौटिल्य ने ब्राह्मणों को दण्ड से मुक्त तो नहीं रखा, किन्तु यह दण्ड उन्हें मात्र अपमानित करने के लिए दिया गया जिससे भविष्य में कोई ब्राह्मण अपराध न कर सके।

दूसरी सदी ई0पू0 के बाद से पुनः ब्राह्मण धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ। शुंगवंश के नेतृत्व में ब्राह्मण धर्म पुनः स्थापित हुआ। अयोध्या अभिलेख में जो अयोध्या के राज्यपाल धनदेव का है। उल्लेख हुआ है, कि पुण्यमित्र शुंग दो अश्वमेघ यज्ञ किये थे। शुंग राजाओं का शासन काल ब्राह्मण धर्म के पुनर्जागरण का काल माना जाता है। वैदिक यज्ञो का अनुष्ठान पुनः प्रचलित हुई। ब्राह्मण

---

[120] वही 8.9, यदा स्वयं न कुर्यातु नृपतिः कार्यदर्शनम्। तदा नियु×ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने।।
[121] वही 10.11
[122] अर्थशास्त्र, 4/8/27, सर्वापराधेष्वपीड़नीयों ब्राह्मणः। तस्याभितांको ललाटे स्याद्व्यवहार पतनाय।
[123] अर्थशास्त्र, 4/8/19 'ब्राह्मणस्य सत्रिपरिग्रहः श्रुतवतस्तपरिवनश्च'

धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया गया तथा वैदिक कर्मकाण्डों के अनुष्ठान पर बल दिया जाने लगा। इसी समय यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित हुआ कि जीव ही जीव का आहार है, तथा यज्ञों में की गयी हिंसा, हिंसा नहीं होती है। मनु ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ब्राह्मणों को यज्ञ में मृगो' तथा पक्षियों को मारने की अनुमति प्रदान की है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' से भी स्पष्ट होता है कि पुण्यमित्र शुंग ने अश्वमेघ यज्ञ किये थे। शुंगवंश की स्थापना के बाद से ही भारतीय समाज में ब्राह्मण धर्म का तद्वत पुनः प्रचार–प्रसार हुआ तथा परवर्ती राजवंशों के आश्रय में याज्ञिक क्रियाएँ पुनः चलने लगी जो कि पूर्व मध्यकाल तक निरन्तर प्रवहमान थी।

दक्षिण भारत के सातवाहन राजाओं के काल में अनेक यज्ञ कार्य सम्पन्न किए गए जैसे– अश्वमेघ यज्ञ, राजसूय, आग्न्याध्येय इत्यादि। गौतमीपुत्र शातकार्णि का शासन दक्षिणापथ में वैदिक (ब्राह्मण) धर्म के पुनः स्थापना काल कहा जाता है। नासिक प्रशस्ति में उसे वेदों का आश्रय तथा अद्वितीय ब्राह्मण (एक ब्राह्मण) कहा गया है।

इसी प्रकार सामाजिक विशेषाधिकार में ब्राह्मण पृथ्वी पर देवतुल्य माना जाता था। उसकी सामाजिक श्रेष्ठता के विषय में यूनानी लेखक ने भी लिखा है। मेगस्थनीज ने भी ब्राह्मण दार्शनिकों की चर्चा की है, जो समाज में बहुत आदरणीय थे।[124] इसी प्रकार आर्थिक विशेषाधिकार में भी प्रतिग्रह का एक मात्र अधिकार ब्राह्मण को था। कौटिल्य में भी प्रतिग्रह ब्राह्मण के लिए ही स्वीकार किया है।[125]

---

[124] इंडिया पृ0 12.
[125] अर्थशास्त्र 3.5

क्षत्रिय वर्ण –

भारतीय समाज में क्षत्रिय की स्थिति ब्राह्मणों के बाद थी, अपितु 'क्षत्रिय' 'वर्ण' शासक वर्ग से सम्बद्ध था। वह चारों वर्णों को संरक्षण भी प्रदान करता था तथा देश और समाज की रक्षा व्यवस्था का भार क्षत्रिय पर था। बौद्ध युग में तो उसकी निश्चय ही श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी। मौर्य युग के पश्चात् क्षत्रिय वर्ण–व्यवस्था के सक्रिय सदस्य बन गए और उन्होंने वर्ण–धर्म का अनुसरण ही नही किया अपितु रक्षा भी की। कौटिल्य के अनुसार अध्ययन, यजन, दान, शास्त्रजीविका ये सब कार्य तथा भूतरक्षण क्षत्रिय के प्रधान कर्म थे।[126] मनु ने भी क्षत्रिय कर्तव्य के बारे में कहा है कि प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषयों में आसक्त न होना यह क्षत्रियों का प्रमुख कर्तव्य था।[127] उसका प्रधान कर्म देश की सुरक्षा, जनता का पालन पोषण, बाह्य आक्रामकों और प्रतिस्पर्धी राज्यों से युद्ध, राज्यों की शासन –व्यवस्था को व्यवस्थित करना था।

यह सर्वविदित है कि जब–जब देश पर शत्रुओं का आक्रमण हुआ क्षत्रियों ने एकत्रित होकर साहस के साथ देश और प्रजा की रक्षा की। नीलकंठ शास्त्री के कथनानुसार दक्षिण भारत में भी क्षत्रिय की समान स्थिति थी वह राज्य संचालन और प्रशासन में संलग्न रहता था।[128] उस युग में जन्मना क्षत्रिय की प्रशंसा की गई थी। राज्य का शासन करने और शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करने के कारण समाज और देश में क्षत्रिय का स्थान श्रेष्ठ था। मौर्यशासकों ने अब्राह्मण धर्मों को अपनाकर ब्राह्मण की उच्चता मानने से इन्कार कर दिया तथा

---

[126] अर्थशास्त्र, 1/3/6 क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्रजीवो भूतरक्षणं च।
[127] मनुस्मृति – प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।
[128] गौतम धर्मसूत्र– 2.2.9 वर्णानामांश्च न्यातोऽभिरक्षते।

जैन और बौद्ध धर्म को प्रश्रय प्रदान किया। यह स्पष्ट है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य अपने जीवन के अन्तिम काल में जैन धर्म का अनुयायी बन गया, और सम्राट अशोक बौद्ध धर्म का।

मौर्य साम्राज्य में क्षत्रियों की स्थिति ब्राह्मणों के बाद मानी गई। क्षत्रिय के कुछ विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे। जिसमें युद्ध में जीती गई सारी वस्तुएं क्षत्रिय शासक की होती थी, जो उसके विशेष अधिकार को व्यक्त करता है। मनु के अनुसार रथ, घोड़ा, हाथी, छत्र, सब प्रकार के अन्न, दस तरह के द्रव्य और वस्तुएं, जो योद्धा जीतकर लाता था, उसी का होता था।[129] जो युद्ध में विजित वस्तुएं राजाओं और अधीनस्थ राजाओं से मिलने वाले उपहार राजा की विशेष सुविधाएं थी। सम्राट चन्द्रगुप्त को ऐसे ही अनेक राजाओं से उपहार में बहुमूल्य धन–सम्पत्ति और राजकन्याएँ प्राप्त हुई थीं।

क्षत्रियों के लिए दण्ड व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया है। सभी धर्मशास्त्रकारों और स्मृतिकारों ने इसी सिद्धान्त के अनुसार क्षत्रियों के लिए दंड का विधान किया था। गौतम के अनुसार ब्राह्मण का अपमान करने वाले क्षत्रिय को 100 (सौ) कार्षापण अर्थदंड देना पड़ता था, वैश्य को 150 कार्षापण।[130] कौटिल्य ने लिखा है कि अगर क्षत्रिय ब्राह्मण की निन्दा करे तो उसे 12 पण अर्थ दण्ड देना चाहिए।[131]

---

[129] मनु0 7.96 रथश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियं। सर्वद्रव्याणि कुष्यं च यो यज्जपति तस्यतत्।।

[130] गौतम धर्म सूत्र 2.3.6–7

[131] अर्थशास्त्र 3.18

वैश्य वर्ण –

पाणिनि ने वैश्य के लिए 'अर्थ' शब्द का उल्लेख किया है। समाज में वैश्यों का स्थान क्रमानुसार तीसरा था। व्यापार–व्यवस्था और कृषि का समस्त भार वैश्य के ऊपर निर्भर करता था। कौटिल्य ने भी इनका कार्य पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषि कार्य, पशुपालन, तथा व्यापार बताया है।[132] मौर्य काल में वैश्यों को सेना में रखा जाता था। प्रो0 शर्मा के इस विचार का आधार मेगस्थनीज का विवरण है जिसमें कहा गया है कि कृषक, जो सामान्यतया वैश्य होते थे, सैनिक सेवा से मुक्त रखे जाते थे ओर सेना उनकी रक्षा के लिए होती थी।[133] एरियन और स्ट्रैबो का कथन है कि भारत में लड़ाकू लोगों की पाँचवी जाति थी, जिसका खर्च स्वयं राज्य वहन करता था।[134]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से स्पष्ट होता है कि वैश्यों की सेना ब्राह्मणों की सेना से उत्तम मानी जाती थी, क्योंकि इनकी संख्या अधिक होती थी।[135]

कौटिल्य का विचार है कि भूमि को कृषि–योग्य बनाकर करदाताओं को जीवन भर के लिए दे देना चाहिए। ये कृषक वैश्य ही होते थे। वैश्यों की रक्षा के लिए राजा को भी अनुशासित करने के उद्देश्य से कौटिल्य ने कहा कि राजा को चाहिए कि वह अत्याचारी बेगारों से कृषकों की रक्षा करे। वैश्य व्यवसायी होते थे।

---

[132] अर्थशास्त्र 1/3/7 वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषि पशुपाल्ये वाणिज्याच।

[133] मैक्रिण्डल, जे0डब्लू0 एनशिएंट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन कलकत्ता 1926, पृ0 83–84

[134] वही पृ0 217

[135] अर्थशास्त्र 0/2/24 बहुलसारं वा वैश्य शूद्रबलमिति।

शूद्र वर्ण –

'शूद्र' का समाज में क्रम अनुसार चौथा स्थान था। अधिकार और कर्तव्य की दृष्टि से समाज में वह अत्यंत उपेक्षित और निम्न था। उसे न वेद पढ़ने का अधिकार था, न यज्ञ करने का। मनु के अनुसार ईश्वर की ओर से शूद्र का एक मात्र कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करना ही प्राचीन धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट किया गया है।[136] कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शूद्रों के निम्नलिखित कर्तव्य का उल्लेख किया है। जिसमें द्विजाति शुश्रूषा–अर्थात् तीनों उच्चवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के व्यक्तियों की सेवा करना।[137] मौर्यकाल में शूद्र की स्थिति वही रही होगी जो सूत्रकाल के अंतिम दिनों में थी। मनु के अनुसार शूद्र को संस्कार कराने और वैदिक मंत्रों के सुनने का अधिकार न था। समाज में शूद्रों की स्थिति हीन थी। उसे कोई सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्राप्त न थे। शूद्र को एक ही अपराध के लिए अत्यंत कठोर और अन्य वर्णों से अधिक दंड दिये जाने का प्रावधान था।

कौटिल्य के कथन से स्पष्ट होता है कि शूद्रों को पूर्णतया द्विजातियों पर निर्भर रहना पड़ता था।

कौटिल्य का विचार है कि जब नयी बस्तियाँ बसायी जाँय तो उस बस्ती में शूद्र और कर्षक सहित सौ से पाँच सौ परिवार रहने चाहिए।[138] क्योंकि जिस बस्ती में शूद्र अधिक होते हैं वह बस्ती पूर्णतया फल देने वाली होती है तथा

---

[136] मनुस्मृति 1.91 एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।

[137] अर्थशास्त्र 1.3

[138] अर्थशास्त्र 2/1/2

उसमें राज्य के सभी आरोपित भार सहने की क्षमता होती है।[139] कौटिल्य के मत से राज्य में शूद्रों की जनसंख्या अधिक होनी चाहिए।[140]

कौटिल्य वर्णाश्रम–व्यवस्था के बाहर समर्थक थे। उन्होंने शूद्रवंशीय राजा को समाप्त कर क्षत्रिय राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को शासनारूढ़ किया था। शूद्रों को सर्वप्रथम कृषि–कार्य में लगाने तथा स्वतन्त्र रूप से उनके कृषि करने की व्यवस्था कौटिल्य ने दी है।[141] इस विषय में डा0 शर्मा का मत है कि मौर्य–काल में दास, शिल्पी, कर्मकार और आदिवासी शूद्र–वर्ग के थे। इनका बड़े स्तर पर नियोजन किया गया था।[142] कृषि करने के लिए शूद्रों की कोटि में आने वाले कर्मकारों को राजा की ओर से बीज तथा बैल प्रदान किये जाते थे, किन्तु इसके बदले में उन्हें उत्पादन का 1/4 अथवा 1/5 कर के रूप में देना पड़ता था। कौटिल्य का कथन है कि शूद्रों को ग्राम की दक्षिणी सीमा पर बसाना चाहिए, जिससे वे खेती का कार्य तथा अन्य व्यवसाय कर सके।[143] शूद्र कर का भुगतान धन के रूप में नहीं, बल्कि श्रम के रूप में करते थे।[144] कुछ ऐसे गाँव भी होते थे जहाँ कर के बदले श्रमिकों की आपूर्ति होती थी।[145]

शूद्रों का एक वर्ग पशुपालक भी था जिनकी मजदूरी घी का 4/10 थी। कौटिल्य ने इनके दायित्वों का उल्लेख करते हुए कहा है कि यदि इनसे मवेशी

---

[139] अर्थशास्त्र– 7/11/21 तस्यां चार्तुवर्ण्याभिनिवेशं सर्वभोगसहत्वादवर वर्णप्राय श्रेयसी बाहुल्यात् ध्रुवत्वाच्च।

[140] अर्थशास्त्र– 6/1/8, अवरवर्णप्रायः।

[141] वही 2/14

[142] शर्मा, पू0नि0पृ0 147 ।

[143] अर्थशास्त्र– 2/4/21

[144] अर्थशास्त्र– 2/35

[145] अर्थशास्त्र– 2/15– जर्नल ऑव दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी पटना–XII पृ0 198.

(पशु) खो जाएँ तो इन्हें शारीरिक दण्ड दिया जा सकता है।[146] शिल्पी भी शूद्रों के ही कोटि में आते थे। मनु का कथन है कि श्रद्धायुक्त होकर अपनी अपेक्षा नीच व्यक्ति (शूद्र) से भी उत्तम विद्या ग्रहण करनी चाहिए।[147]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राक्–मौर्य–काल में शिथिल हुई वर्ण–व्यवस्था को कौटिल्य ने दृढ़ करने का प्रयास किया और उसका पालन करने के लिए उसने राजा और दण्ड की सहायता ली। एक स्थान पर विचार व्यक्त किया गया कि अपने कर्म से गिरा शूद्र चैलाशक नामक प्रेत होता है।[148] शूद्र के सत्य बोलने से यदि ब्राह्मण–क्षत्रिय की हत्या हो रही हो तो उसे असत्य ही बोलना चाहिए। मौर्योत्तर काल में शूद्रों और वैश्यों के बीच आर्थिक भेदभाव मिटते जा रहे थे, पर शूद्र मुख्यतया अलग–अलग भूस्वामियों के खेतों में कृषि मजदूर का काम कर रहे थे। मनु के विधान से जिनके द्वारा शूद्रों पर नई आर्थिक अशक्ताएँ आरोपित की गई थी, प्रायः प्रभावहीन हो गए थे, किंतु शूद्र समुदाय के रहन–सहन की स्थिति में किसी प्रकार के परिवर्तन का आभास नहीं मिलता। दासता के संबंध में मनु के नियम शूद्र की नागरिक हैंसियत पर प्रकाश डालते हैं। कौटिल्य का मत है कि आर्य–माँ बाप का शूद्र दास नहीं बनाया जा सकता है। किंतु मनु ने शूद्र पुत्रों को परिवार की संपत्ति में हिस्सा पाने का अधिकार दिया। मनु कहते हैं कि शूद्र खरीदा हुआ हो या नहीं, उसे दास बनना ही होगा, क्योंकि परमात्मा ने उसका सृजन ब्राह्मण की सेवा के लिए किया है।[149] शूद्र की तुलना में द्विज जातियों के सदस्य की दास नहीं बनाया जा सकता है। यदि कोई ब्राह्मण किसी

---

[146] अर्थशास्त्र 2/20 ''स्वयं हन्ता घातयिताहर्ता हारयिताचवध्यः।''

[147] मनु0 2.23.8

[148] मनु0 12/72

[149] वही, VIII. 413 शूद्रत कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रतमेव वा, दास्यायेव हि सृष्टोसो ब्राह्मणस्य स्वयंम्भुवा।

द्विज जाति के लोगों को दास के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य करे तो राजा उसे छः सौ पण जुर्माना करेगा।[150] इस संबंध में कौटिल्य ने जुर्माने की वर्गीकृत योजना है। सबसे अधिक जुर्माना 48 पण है, जो ब्राह्मण को दान बनाने के लिए किया जा सकता है।[151]

धर्म के क्षेत्र में शूद्र वैदिक यज्ञ के अधिकार से वंचित हो रहे थे।[152] कहा जाता है कि शूद्र जातिच्युत नहीं हो सकता, वह संस्कार पाने योग्य नहीं है और उसे आर्यों के धर्म का अनुसरण करने का कोई अधिकार नहीं है।[153]

शूद्र की स्थिति में परिवर्तन के इन लक्षणों से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि जिस पुराने समाज ने उन पर अनेकानेक अशक्ताएँ लादकर उन्हें गुलाम बना रखा था, वह विलीन होने लगा था और उसकी जगह ऐसा नया समाज पनप रहा था जिसने उन्हें बेहतर स्थान दिया था। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को गुप्तकाल में अधिक बढ़ावा मिला। विदेशी आक्रमणकारियों के आचरण का वर्णन प्रस्तुत करते हुए विष्णुपुराण में भविष्यवाणी की गई है कि इन विदेशी शासकों के समय में लोगों को धन के ही आधार पर पद मिलेगा, संपत्ति ही धर्म का साधन बनेगी और दान ही धर्म का मूल होगा।

*****

[150] वही VIII. 412.
[151] अर्थशास्त्र, III, 13
[152] पतंजलि ऑन पाणिनीन ग्रामर, IV. 1.93
[153] मनुस्मृति, X. 126